बाल शिक्षण: कुछ शैक्षणिक और सामाजिक प्रश्न

❑ प्रा. रमेश पानसे

अनुवाद : अनुभा मेहता

शिक्षा के प्रसार और शैक्षिक गुणवत्ता के प्रति बढ़ती चिन्ता के साथ ही स्कूल-पूर्व बाल-शिक्षण के प्रति भी आम जागरूकता में इजाफा हुआ है । तथापि स्कूल पूर्व शिक्षण के क्षेत्र में गंभीर विमर्श को लेकर स्थिति संतोषप्रद नहीं है । महाराष्ट्र की 'भारती अर्थ विज्ञान वर्धिनी' संस्था में 31 अक्टूबर, 1999 को 'बाल शिक्षण विषयक प्रश्न' पर चर्चा के लिए एक सभा का आयोजन किया । यहां प्रस्तुत है इस अवसर पर प्रा. रमेश पानसे द्वारा दिये गये भाषण का सार ।

व्यक्ति और समाज की दृष्टि से बालशिक्षण एक महत्वपूर्ण मुद्दा है ।

बालशिक्षण का अर्थ क्या है ?

बालशिक्षण का मतलब पाठशाला पूर्व का शिक्षण, याने छ: वर्ष से कम आयु के बच्चों का शिक्षण । व्यक्ति के जीवन में और सामाजिक जीवन में इस शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । बाल्यावस्था ही व्यक्ति-विकास की सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था होती है।

बाल्यावस्था के समय में मनुष्य का दिमाग विकसित होता है। (दिमाग ही व्यक्ति की आगे की जीवन की सारी क्रियाओं का नियंत्रण करता है ।) इसके अलावा इसी समय में मनुष्य की ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय अपनी अपनी क्षमता के पूर्णत्व को प्राप्त करती है । (यही मनुष्य के जीवन के सारे कार्यों को अंत तक आगे बढ़ाने में मदद करती हैं ।) मनुष्य के मन की स्थिरता, भावनाओं का संतुलन और सहयोगी सामाजिकता प्राप्त होने का यह आधारभूत समय होता है । जिसे शास्त्रीय स्वरूप का बालशिक्षण कहते हैं । बाल्यावस्था की विविध क्षमता के विकास को मदद देते हुए और प्रगति में रूकावट लाने वाली चीजों को उसी समय दूर करने में यह शिक्षण सहायक सिद्ध होता है ।

शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान यह कहता है कि बाल्यावस्था में पैदा होने वाली विकृति भविष्य में पूरी तरह से दूर होना मुश्किल है । बालशिक्षण इस बात का प्रयत्न करता है कि यह विकृति निर्मित न हो, और अगर विकृति पैदा होती भी है, तो प्रारंभ में ही वह दूर की जा सके । शरीर शास्त्र, बालमनोविज्ञान, शिक्षण शास्त्र, यह सारे शास्त्र आधुनिक बाल शिक्षण की नींव माने जाते हैं ।

बच्चे की कुदरती क्षमता, उसकी कुदरत की बुद्धिमता, उसके विकास की कुदरती गति, इत्यादि बालशिक्षण के आधारभूत तत्व है । विविध शास्त्र और इन तत्वों के आधार से बालशिक्षण का शास्त्र तैयार हुआ है । बालशिक्षण पद्धति बालकेन्द्रित है ।

बच्चों की क्षमता के विकास को बढ़ावा देने वाली शैक्षणिक सामग्री, ज्ञानेन्द्रियों के विकास को बढ़ाना देने वाला शैक्षणिक साहित्य, बच्चों को पढ़ते समय आनंदित रखने वाला वातावरण, बच्चों की कलात्मकता को तोष प्रदान देने वाली सौंदर्य रचना और बच्चों को मनचाहा करने की स्वतंत्रता, इन सब बातों का शास्त्रीय बालशाला में समावेश किया जाता है । सहज ही इन सब बातों को समझने वाला, बच्चों के मानस को समझने वाला, बाल शिक्षण का शास्त्र जानने वाला और बच्चों पर प्रेम रखने वाला उच्च शिक्षित-प्रशिक्षित शिक्षक ही बालशाला के लिए योग्य शिक्षक हो सकता है । ऐसी शास्त्रीय पद्धतियों से चलने वाली बालशाला को प्राप्त करना हर बच्चे का अधिकार है । इस प्रकार बच्चों के अधिकारों को प्रस्तुत करने वाले करारनामे पर हस्ताक्षर करने वाला भारत एक राष्ट्र है ।

व्यक्ति और समाज में कुछ दोष जहां दिखते हैं वहीं उनके उपाय भी मिल जाते हैं, यह बात ध्यान में रखने की है, इसलिए बालशिक्षण के सार्वत्रिक प्रसार का आग्रह अपने को रखना चाहिये। और जहां कहीं भी बालशिक्षण होता है वहां वैज्ञानिक पद्धति से शिक्षण दिया जाये, इस बात पर बल देने की जरूरत है ।

घर और स्कूल, ये दोनों ही बालशिक्षण के खास ठिकाने हैं। परन्तु आज दोनों ही जगह पर 'बालकेन्द्रित' कहने जैसी व्यवस्था नहीं है । बालक को एक स्वतंत्र व्यक्ति समझना, उनकी शारीरिक और मानसिक आवश्यकतायें पूरी करना, उनकी स्वयं सीखने की पद्धति को समझ कर उसके अनुसार अवसर देना, उनके विकास में किसी प्रकार की रुकावट न आये इस प्रकार व्यवस्था करना, इन सब विषयों का समावेश हो; इस प्रकार की व्यवस्था का मतलब है, 'बालकेन्द्रित व्यवस्था' । शास्त्रीय पद्धति से चलने वाले स्कूलों

में ऐसी बालकेन्द्रित व्यवस्था दिखाई देती है । परन्तु बहुत से स्कूलों में और घरों में अलग ही दृश्य देखने को मिलता है । बहुत से घरों में मां-बाप केन्द्रित और स्कूलों में शिक्षक केन्द्रित व्यवस्था होती है । इसलिए घर में मां-बाप बालकों से उनकी क्षमता से अधिक अपेक्षा रखते हैं और उनके विकास के लिए तो उनकी अपेक्षा अवास्तविक ही होती है । ऐसी अवास्तविक अपेक्षाओं के साथ मां-बाप बालकों को स्कूलों में भेजते हैं और उनकी बालकों संबंधी अपेक्षायें शिक्षण द्वारा पूरी हों ऐसी मांग रखते हैं । इससे स्कूलों में शिक्षण की एक प्रकार की पद्धति बन गई है जहां बालकों को आज्ञाकारी बनाना, अनुशासित करना और आगे के समय में जो सिखाना है ऐसी प्राथमिक शिक्षा देने की अपेक्षा की जाती है । ऐसी परिस्थिति का भंयकर परिणाम हो सकता है । शिक्षण में शुरूआत के वर्षों में बच्चों के मन पर जो अपेक्षाओं का तनाव और उनकी पीठ व बुद्धि पर शिक्षण का बोझ डाला जाता है, बाल शिक्षण संबंधी यह पहला और अत्यंत गंभीर प्रश्न है ।

आज प्रचलित शिक्षण पद्धति में बुद्धिमत्ता पर जोर दिया जाता है । पाठ्य-पुस्तकों का उपयोग, व्याख्यान-पद्धति द्वारा सिखाना, रटन द्वारा याद करना और उस पर आधारित लिखित परीक्षा देना, इस तरह से ही बुद्धि का विकास होता है, ऐसा माना जाता है । ऐसा बुद्धि विकास संबंधी एक नया शैक्षणिक प्रश्न जो अपने सामने आया है उस पर विचार करना है । आज का ये जो चौखटा शिक्षण है उसके पीछे दो धारणायें हैं । एक धारणा प्रमाणे बुद्धिमत्ता मुख्यतया आनुवंशिक है । ये धारणा डार्विन के विचार से संबंधित है । दूसरी धारणा ऐसी है कि बुद्धिमत्ता स्थिर है मतलब जिसको कुदरत से जितनी मिलती है वह उतनी ही है। अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों ने इस पर आधारित बुद्धिमापन पद्धति बौद्धिक क्षमता (आई. क्यू.) मापने के लिए विकसित की है और आजकल इस पद्धति का उपयोग बालकों की रुचि समझने के लिए किया जाता है । परन्तु आज बुद्धिमत्ता संबंधी कितने ही नये अनुसंधान* हुये हैं जिनका निष्कर्ष इस प्रकार दिखता है ।

1. आज ऊपर बताई हुई बुद्धिमता का आनुवांशिकता व स्थिरता का लक्षण सिद्ध होने वाला नहीं है ।

2. हरेक को बुद्धिमत्ता का एक विशाल क्षेत्र मिला हुआ है और उसमें विविध प्रकार की बुद्धिमत्ता का समावेश होता है । परन्तु सभी को सभी प्रकार की बुद्धिमत्ता और वह भी समान तीव्रता की प्राप्त नहीं होती ।

3. हर किसी को प्रदत्त बौद्धिक क्षमता को बढ़ाने के लिए सीखना होता है ।

आज के इन नये संशोधनों को स्वीकार करके यदि आज की शिक्षण व्यवस्था की तरफ देखें तो कितने ही नये शैक्षणिक प्रश्न नजर आते हैं । उदाहरण के लिए -

(अ) आज अपने स्कूलों में एक ही प्रकार की बुद्धिमत्ता पर जोर दिया जाता है या एक पक्ष को महत्व दिया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप यह विशिष्ट बुद्धिमत्ता न होने वाले बच्चों को शिक्षण में उपेक्षित कर दिया जाता है ।

(आ) स्कूलों का आज का ढांचा बुद्धिमता के विविध विकास को अवसर नहीं देता।

(इ) स्कूलों की प्रचलित शिक्षण पद्धति बुद्धिमत्ता (एक अथवा अनेक) की तीव्रता बढ़ाने का काम परिणामकारक रीति से नहीं करती ।

(ई) बुद्धिमत्ता बढ़ाने का ऐसा परिणामकारक काम छठे व सातवें वर्ष में बहुत ही तीव्रता से होता है, परन्तु बालमंदिरों (पूर्व प्राथमिक शालाओं) में इस तरफ ध्यान नहीं दिया जाता ।

बालशिक्षण के संदर्भ में इस मूलभूत शैक्षणिक प्रश्न के साथ कितने ही सामाजिक प्रश्न हैं जिस तरफ आपका ध्यान दिलाना है। मनुष्य के जीवन में बाल्यावस्था, जो महत्वपूर्ण अवस्था है, उसकी समझदारी से संभाल होनी चाहिये, परन्तु इस तरफ आज मां-बाप, शिक्षक व पूरे समाज का ध्यान नहीं है । घर के बाहर बाल शिक्षण दैनिक चर्चा का विषय नहीं बना है । लोगों के मन में ही उसके लिए महत्व नहीं है । इस कारण इस विषय से लोग अनजान रहते हैं । बाल शिक्षण महत्वपूर्ण है और उसका कोई शास्त्र अस्तित्व में है, इस बारे में समाज में बड़ी नासमझी है । इस कारण से घर व स्कूल बालकेन्द्रित व्यवस्था वाले नहीं हैं ।

दूसरी खास समस्या यह है कि देश में सभी बालकों तक बाल शिक्षण अभी पहुंचा नहीं है । जिन बालकों को बाल शिक्षण नहीं मिलता, वे अपनी बुद्धिमत्ता के विकास के अवसर से वंचित रहते हैं। ऐसा पता चलता है कि ऐसे बच्चे अधिकतर ग्रामीण, गरीब व अनुसूचित जाति में होते हैं । इसके परिणाम स्वरूप अपनी बुद्धिमत्ता के जोर पर समाज में उच्च, आर्थिक-सामाजिक लाभ मिलने से वे

*** बालशिक्षण का इतिहास**

- प्लेटो (इ.स. पूर्व 427 से 347), ॲरिस्टॉटल (इ.स. पूर्व 374-322) उन्होंने बाल्यावस्था के शिक्षण के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं।
- आज के युग में कोमेनिअस (इ.स. 1592 से 1670) लॉक (1632-1704), रूसो (1712-1778), कांट (1724 - 1804), पेस्टॉलॉजी (1746 - 1827) रॉबर्ट ओवेन (1775-1858), फ्रोबेल (1702 - 1852) जॉन डयुवी 1759-1952), मॉंटेसरी (1870-1952), गिजुभाई बधेका 1775-1939) ताराबाई मोडक (1792-1973) शेष नामले (1910-1987) इन सभी ने बालशिक्षण के शास्त्र को विकसित करने में अपना सहयोग दिया है ।

दूर रहते हैं । इससे समाज की विषमता मात्र दिखती ही नहीं, बढ़ती भी है ।

इस प्रकार के सामाजिक-शैक्षणिक स्वरूप के प्रश्नों पर दखल तो खास करके सरकार को करनी चाहिये । परन्तु सरकार के पास बालशिक्षण संबंधी कोई मापदंड नहीं है । उल्टा सरकार का कार्य विषमता कम करने के बदले बढ़ाता ही है । केन्द्र सरकार की 'एकीकृत बाल विकास' योजना द्वारा गांवों में व शहर की झोंपड़पट्टी विस्तार में 'आंगनबाड़ी' चलाई जाती हैं । इन आंगनबाड़ीयों का मुख्य उद्देश्य माता और बच्चों का पालन, स्वास्थ्य व पोषण संबंधी कार्य करना है। आंगनबाड़ी की सेविकाओं के अल्पशिक्षित होने के साथ उन्हें, समुचित नौकरी पूर्व-प्रशिक्षण भी नहीं मिला होता है। ऐसे लोगों के हाथ अपने बच्चों को सौंप कर बाल-शिक्षण की अपेक्षा की जाती है । यह स्थिति गलत होने के साथ सरकार के बालशिक्षण विषयक अज्ञान को दर्शाती है । इतना ही नहीं आज महाराष्ट्र सरकार जगह जगह बालमंदिर बंद करके उसकी जगह आंगनबाड़ी शुरू कर रही है जिसके परिणाम स्वरूप गांवों व गरीबों के बच्चों को जो थोड़ा बहुत बालशिक्षण मिलता था, वह भी बंद हो रहा है । इससे पिछड़े वर्ग के बच्चों को शिक्षण व शिक्षण द्वारा विकास के अवसर मिलने के बदले ये अवसर छीनने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

सरकार को बालविषय की पूरी समझ नहीं है परन्तु आज तक विविध स्तरों की सरकारी समितियों, शिक्षा आयोगों ने इस विषय पर जो कुछ कहा है, उसकी भी सरकार को समझ दिखायी नहीं पड़ती ।

बाल शिक्षण विषयों के लिए मापदंड निश्चित करने के लिए सर्वसम्मत नियम बनाने चाहिए । महाराष्ट्र में महाराष्ट्र बाल शिक्षण परिषद ने ऐसा आग्रह रखा है जिसकी पृष्ठभूमि विशाल है ।

1952 में पहली पंचवर्षीय योजना शुरू हुई थी। इस योजना की रूपरेखा में बताया गया है कि ''अपने देश में अज्ञानता व गरीबी को ध्यान में रखा जाये तो दूसरे देशों की अपेक्षा यहां बाल शिक्षण देना बहुत जरूरी है ।'' उसी वर्ष ताराबाई मोडक ने मुंबई राज्य विधान परिषद में बाल शिक्षण विषयक प्रस्ताव लाने का प्रयत्न किया था। परन्तु वह भी उन्हें वापिस लेना पड़ा था । राज्य सभा में भी ऐसा प्रस्ताव 1955 में वि. सी. सखटे ने लाने का प्रयत्न किया था। इसके साथ ही केन्द्र व राज्य सरकार की बहुत-सी समितियों ने समय समय पर बालशिक्षण विषयक सिफारिशें करके सरकार को जागृत करने का प्रयत्न किया ।

महाराष्ट्र सरकार की ही नियुक्त की हुई ''राज्य स्तरीय बाल शिक्षण समिति (राम जोशी समिति) ने 1996 में अपनी सिफारिश सरकार के सामने रखी और सरकार ने उन सभी सिफारिशों को स्वीकार करने की घोषणा की, परन्तु उन सिफारिशों को कानूनों में बदलते समय मात्र एक ही सिफारिश पर विचार किया व अन्यों की उपेक्षा की गयी । ये अधूरा कानून भी सरकार ने दो बार एक एक वर्ष के लिये स्थगित किया । सरकार बाल शिक्षण के संबंध में कितनी अनास्था रखती है उसका ये ज्वलंत उदाहरण है। इससे भी खास घटना यह कि सरकार ने रामजोशी समिति की घोषणा को स्वीकार तो किया परन्तु घोषित नहीं किया। अन्त में एक खोजी पत्रकार ने वह लोगों के सामने रखी । बाल शिक्षण को अभी भी उतनी मान्यता नहीं मिलती है, ऐसा क्यों है ?

भारतीय संविधान के मार्गदर्शक तत्त्वों की धारा 45 के अनुसार 14 वर्ष तक की उम्र तक सभी बालकों को मुफ्त व अनिवार्य शिक्षण मिलना चाहिये । फिर धारा 46 के अनुसार समाज के दुर्बल जनजाति वर्ग का शैक्षणिक व आर्थिक हित करना और साथ ही सामाजिक अन्याय व सब तरह के शोषण से उनका संरक्षण करना, ये काम सरकार पर डाला गया है । परन्तु सरकार की बालमंदिर बंद करके उसकी जगह आंगनबाड़ी शुरू करने का काम व बाल शिक्षण विषयक कानून स्थगित करना मात्र वंचित तबके के विरुद्ध अन्याय करने व उसे शैक्षणिक हितों से वंचित रखने वाला है ।

अभी हम प्राथमिक शिक्षण के अधिकार को मूलभूत अधिकार के रूप में करने के द्वार पर खड़े हैं । इस समय जो प्रस्ताव संसद के सामने रखा गया है उसमें धारा 45 के अन्तर्गत 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बालकों को जो मूलभूत अधिकार दिये गये हैं, उसको रद्द करके 6 वर्ष की उम्र तक के बालकों का ही उल्लेख किया जाये, ऐसा जोर दिया जा रहा है । (वास्तव में, 93 वें संविधान संशोधन विधेयक में अनुच्छेद 45 को, जिसमें 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा देने की बात है, हटा दिया गया है क्योंकि यह प्रावधान 21ए के तहत शिक्षा के मौलिक अधिकार के रूप में शामिल कर लिया गया है । इस संशोधन के अन्तर्गत अब अनुच्छेद 45 में शून्य से 6 वर्ष तक के बच्चों के लिए पोषण एवं शिक्षा की बात कही गई है, अर्थात राज्य इसे सिद्धांतत: (नीति निर्देशक सिद्धांत के रूप में) स्वीकार करता है । - सं.) समाज के सभी वर्ग के लोगों द्वारा इसके विरुद्ध आवाज उठाने की जरूरत है । परन्तु ऐसा करेगा कौन ? बाल शिक्षण का सामाजिक व शैक्षिणिक क्षेत्र अभी स्वयं ही बाल्यावस्था में है। ऐसा लगता है यहां जागरूकता ही पूरी मात्रा में नहीं है ।

बुद्धिजीवियों का नेतृत्त्व भी सक्षम नहीं है । इस क्षेत्र संबंधी पूरी जानकारी न होने के कारण इस क्षेत्र में अनुसंधान, लेखन, भाषण वगैरह के लिए कोई आव्हान नहीं किया लगता है । बाल शिक्षण की शुरूआत ही जोरदार गति से हो, इसके लिये बुद्धिमान कार्यकर्ता भी अपने आप से ही निकलते हैं । इसके लिए मैं खुद का आव्हान करता हूं । ◆